

शिक्षा के साथ बंद हो मजाक

शिक्षा को लेकर मौजूदा सोच और प्रक्रिया को बदलना ही होगा

यह अद्भुत संयोग है कि जहाँ शिक्षा हमारे जीवन से जितनी ही अधिक गंभीरता से जुड़ी है वहीं हमारी व्यवस्था उतनी ही तीव्र उदासीनता के साथ उसका मजाक उड़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ रही है। सरकारी तंत्र में शिक्षा का नंबर बहुत बाद में या शायद सबके बाद ही आता है। शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने और छात्रों को विभिन्न कौशलों में निपुण बनाने की सरकारी सदिच्छा के बावजूद स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। इसका ज्वलंत उदाहरण विश्व में प्रतिष्ठित प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय की भूमि बिहार से आ रहा है जहाँ दिग्गज राजनेता, विद्वान, डॉक्टर, वकील और लेखक पैदा होते रहे हैं। अधिक दिन नहीं हुए जब लोग अपनी डिग्री के आगे आवसफोर्ड और कैंब्रिज की तर्ज पर गर्व से पटना लिखा करते थे। स्थितियाँ बिगड़नी शुरू हुईं और धीरे-धीरे पढ़ने-लिखने वालों का वर्ग से तेजी से पलायन शुरू हुआ। आज दिल्ली जैसे शहर में आपसे टकराने वाला कदाचित् हर तीसरा-चौथा विद्यार्थी बिहार का ही मिलेगा। बिहार के अंदर के हालात बिगड़ते जा रहे हैं। पिछले दो वर्षों में बिहार के माध्यमिक शिक्षा मंडल में वार्षिक परीक्षाओं के परिणामों को लेकर जो कटु तथ्य सामने आए हैं वे शिक्षा से जुड़े हर व्यक्ति को व्यथित करने वाले हैं। वहाँ व्यापक पैमाने पर जिस तरह की सुनियोजित भयंकर धांधली सामने आ रही है उससे यह बात साफ होती जा रही है कि हमारी व्यवस्था में घुन लग चुका है और वह खोखली होती चली जा रही है।

आज जब सारी दुनिया में ज्ञान का विस्फोट हो रहा है और नित्य नए विचार, सिद्धांत और पद्धतियाँ आ रही हैं तब भारत के अधिकांश शिक्षा संस्थान अपने-अपने टोटकों वाली अकादमिक रिचुअल के साथ हर नवाचार को घटा बताते हुए कुछ न करने के लिए कटिबद्ध दिखते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो सब कुछ ठीक होने का इंतजार कर रहे हैं। एक तरह से 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी' वाली स्थिति है। अधिकांश शिक्षा संस्थान वस्तुतः यथार्थस्थितिवाद में ही जी रहे हैं। वे वैसे ही रहने में संतुष्ट हैं जैसे हैं। आस-पास के अन्य प्रदेशों में नकल और गैर शैक्षिक अनुचित साधनों की सहायता से परीक्षा में मनचाहे अंक और योग्यता दर्शाने वाले प्रमाण पत्र मनचाही विधि से प्राप्त करने की (कु)चेष्टाएँ बढ़ती ही जा रही हैं। नकली डिग्री और प्रमाणपत्र के सहारे नौकरी पाना ही अब एक मात्र उद्देश्य नजर आता है। प्रमाण पत्र बांटने वाली संस्थाएँ बुद्धि, ज्ञान और कौशल का खुलेआम अपमान कर रही हैं। इसके घातक सामाजिक परिणाम होंगे। सरकार



प्रो गिरीश्वर मिश्र



और उसकी व्यवस्था अपनी अक्षमता का ठीकरा किसी न किसी पर फोड़ कर कर्तव्यमुक्त हो लेगी। अधिक होगा तो कोई कमेटी बैठेगी और उसकी जांच बस्ते में बंद कर दी जाएगी। शिक्षा की जिस प्रक्रिया से पढ़ लिख कर छात्र निकल रहे हैं उन्हीं में से कुछ अध्यापन के पेशे में भी आ जाते हैं और अयोग्य होने पर भी दांव-पेंच के सहारे काम चलाते रहते हैं। उनमें से कुछ आगे भी बढ़ जाते हैं। इस परिवेश में आज कल तमाम युवा गलत पर सरल तरीके से धनोपार्जन करने के नए-नए उपाय ढूँढ़ते फिरते हैं। इन सबसे सामाजिक परिवेश में नैतिक और आपराधिक किस्म के संकट उभरने की आशंका को बल मिलता है।

ज्ञान को पवित्र, क्लेशों से मुक्ति दिलाने वाला और कष्टों को दूर करने वाला एक श्रेष्ठ साधन माना जाता है। कहते हैं कि राजा तो सिर्फ अपने देश में ही पूजा जाता है परंतु विद्वान की तो देश-विदेश हर जगह ही पूछ होती है। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि एक नागरिक के रूप में शिक्षा पाकर हम स्वयं अपने प्रति, अपने परिवार, समुदाय और देश के प्रति दायित्वों को अच्छी तरह निभा पाते हैं। सरकारें औपचारिक रूप से विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की संस्थाओं के माध्यम से ज्ञान के प्रचार-प्रसार और खास तौर पर सामाजिक विस्तार का काम आगे बढ़ा रही हैं। इस कार्य में बहुत दिनों तक सार्वजनिक या सरकारी क्षेत्र ही प्रमुख

अधिकांश संस्थानों के लिए शिक्षा प्रदान करने का काम केवल प्रवेश और परीक्षा के दो तकनीकी कार्यों तक ही सिमटता जा रहा है

किरदार था, परंतु अब स्थिति तेजी से बदल रही है और निजी क्षेत्र का शिक्षा में जोरदार प्रवेश हो रहा है। अब शिशुओं के लिए प्ले स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के निजी संस्थानों की बाढ़ सी आ गई है। इनमें से अधिकतर व्यापार-व्यवसाय की तर्ज पर शिक्षा संस्थानों को आय के अतिरिक्त और सम्मानजनक साधन के रूप में चला रहे हैं। सरकारी महकमे के नौकरशाही वाले लटक-झटके से मुक्त कई निजी संस्थान शिक्षा की अच्छी व्यवस्था कर रहे हैं पर उसकी अंधाधुंध कीमत भी वसूल रहे हैं। उनकी शिक्षा महंगी इसलिए भी लगती है कि अधिकांश सरकारी शिक्षा संस्थान लगभग मुफ्त शिक्षा देते हैं, क्योंकि वहाँ की सारी व्यवस्था सब्सिडी पर चल रही होती है। इस तरह एक ही शहर में एक ही पाठ्यक्रम की फीस में सरकारी और निजी संस्थानों के बीच जमीन-आसमान का फर्क दिखता है। इन्हें नियमित और व्यवस्थित करने का कोई तरीका नहीं है।

आम आदमी की मुसीबतें तब और भारी हो जाती हैं जब उनके बच्चों को किसी अच्छे स्कूल में प्रवेश नहीं मिलता। अधिकांश शिक्षा संस्थानों के लिए शिक्षा प्रदान करने का काम सिर्फ प्रवेश और परीक्षा के दो तकनीकी कार्यों तक ही सिमटता जा रहा है। जहाँ तक सीखने और सिखाने की प्रक्रिया का प्रश्न है वह भगवान भरोसे हो चल रही है। हमारी शिक्षा संस्थाएँ इनके प्रति लगभग तटस्थ सा रुख अपनाती हैं। कक्षा और कक्षा के बाहर कोई विषय किस तरह जीवित रूप में अनुभव किया जाए और छात्र को विषय सीखने का जीवंत अनुभव मिले तथा उस अनुभव का किसी समस्या के समाधान में उपयोग करने का अवसर बने, इसके लिए शिक्षा में कहीं जगह नहीं बचती है। वहाँ तो 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' को ही लाभकर माना जाता है। शिक्षा में सृजनात्मकता और नवोन्मेष एक दूसरे के विरोधी होते जा रहे हैं। इसके विपरीत बहु-विकल्प वाले (मल्टीपल च्वायस) सवाल रटने और तीर तुक्के को और उपयोगी बना रहे हैं। वे चल इसलिए रहे हैं, क्योंकि उनके उपयोग से परीक्षा और मूल्यांकन आसान हो जाता है। ज्ञान पाना, उसका उपयोग करने की क्षमता और सर्जनात्मकता का विकास बढ़ा जरूरी है। 21वीं सदी में हम आगे चल सकें, इसके लिए शिक्षा के बारे में अपनी सोच और प्रक्रिया को बदलना ही होगा।

(लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के कुलपति हैं)

response@jagran.com